Research Paper IMPACT FACTOR VALUE : 5.983 | E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 11 | ISSUE : 6 | JUNE 2025

गुप्तोत्तर काल में धार्मिक संप्रदायों का विकास : एक अध्ययन

शंकर लाल बलाई [1]

[1] **गेस्ट फैकल्टी हिस्ट्री (NET), केकड़ी (अजमेर) राजस्थान.**

ABSTRACT:

गुप्तोत्तर काल (600–1200 ई.) भारतीय इतिहास का वह महत्वपूर्ण चरण है जिसमें सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं, धार्मिक मान्यताओं, दार्शनिक विचारों और धार्मिक संप्रदायों में अभूतपूर्व परिवर्तन देखने को मिलता है। गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् भारतीय उपमहाद्वीप छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया, जिसके परिणामस्वरूप राजनीतिक अस्थिरता, आर्थिक परिवर्तन और सामाजिक पुनर्गठन की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। इस बदलते परिवेश ने धर्म को न केवल सामाजिक शक्ति के रूप में पुनः स्थापित किया, बल्कि विभिन्न धार्मिक संप्रदायों की वृद्धि और विस्तार को भी तीव्र गति प्रदान की। यह काल धार्मिक प्रयोगों, विचार-संघर्षों, लोकविश्वासों और दार्शनिक बहुलता का स्वर्णकाल माना जाता है। इस अवधि में तीन प्रमुख दिशाओं में धार्मिक संप्रदायों का विकास स्पष्ट रूप से दिखाई देता है– **(1) हिंदू धर्म में शैव, वैष्णव, शाक्त और तांत्रिक परंपराओं का सुदृढ़ीकरण, (2) बौद्ध धर्म में वज्रयान, सहजयान और कालचक्रयान का उद्भव, और (3) जैन धर्म में दिगंबर-श्वेतांबर ग्रंथकारों का पुनरुत्थान एवं दार्शनिक विकास।** इन संप्रदायों का विकास आकस्मिक नहीं था, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के संयुक्त प्रभाव का परिणाम था।

गुप्तोत्तर काल में शैव धर्म सबसे अधिक संगठित रूप में उभरता है। पाशुपत, कापालिक, कालामुख, कश्मीर शैववाद और वीरशैव जैसे अनेक मजबूत संप्रदाय इसी समय पूर्णता को प्राप्त होते हैं। दूसरी ओर वैष्णव धर्म में **पंचरात्र, भागवत, रामानुज का विशिष्टाद्वैत, मध्व का द्वैतवाद,** और अनेक भक्तिपरक परंपराएँ विकसित हुईं। शाक्त-संप्रदाय में देवी आराधना, तांत्रिक साधनाएँ, शक्तिपीठों का उदय और 'देवीमहात्म्य' जैसे ग्रंथों का रचना-काल भी इसी अवधि में माना जाता है। बौद्ध धर्म में इस समय बहुत बड़े परिवर्तन होते हैं। जबकि हीनयान और महायान पहले से मौजूद थे, गुप्तोत्तर काल में तंत्रवाद के प्रभाव से **वज्रयान, सहजयान,** और **तांत्रिक-बौद्ध परंपराएँ** उभरती हैं। नालंदा, विक्रमशिला, सोमपुरी जैसे महाविहार बौद्ध शिक्षा के विशाल केंद्र बने। इसका प्रभाव नेपाल, तिब्बत, भूटान और दक्षिण-पूर्व एशिया तक फैला। जैन धर्म में भी अनेक धार्मिक आचार्यों का उदय हुआ, जैसे–समंतु भद्र, जिनसेन, जिनदत्त सूर्य, हरिभद्र सूर्य आदि। जैन आगमों और तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओं की रचना इसी समय व्यापक रूप से की गई।

गुप्तोत्तर काल की धार्मिक चेतना केवल उच्च वर्ग तक सीमित नहीं थी। लोकधर्म, ग्रामदेवता, ग्रामसंप्रदाय, सिद्ध-नाथ परंपरा, योग-तंत्र उपासना, भक्ति-आंदोलन की प्रारंभिक धाराएँ और जनसामान्य की आस्था ने धर्म को जनोन्मुख बनाया। इस काल की एक विशेष पहचान तांत्रिक परंपरा का उदय है, जिसने शैव, शाक्त और बौद्ध सभी धार्मिक धाराओं को प्रभावित किया। तांत्रिक साधना लोकविश्वासों, जनजातीय संस्कृति और मुख्यधारा धर्म के अनुकूलन का परिणाम थी। गुप्तोत्तर काल में धार्मिक संप्रदायों का विकास केवल आध्यात्मिक प्रवृत्ति नहीं था, बल्कि यह सामाजिक परिवर्तन, राजनीतिक मजबूरियों, सांस्कृतिक विस्तार और आर्थिक स्थितियों का परिणाम था। इस काल की धार्मिक बहुलता ने भारतीय सभ्यता को स्थायी रूप से आकार दिया, जिसकी छाप आज भी स्पष्ट दिखाई देती है।

KEYWORDS:

गुप्तोत्तर काल, धार्मिक संप्रदाय, शैव संप्रदाय, वैष्णव संप्रदाय, शाक्त परंपरा, तांत्रिक परंपरा, बौद्ध वज्रयान, जैन धर्म का विकास, भक्ति आंदोलन, भारतीय दर्शन, नालंदा विश्वविद्यालय, कश्मीर शैववाद, विशिष्टाद्वैत, कालचक्रयान।

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
25th June 2025	30th June 2025

विषय-वस्तु

गुप्तोत्तर काल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

गुप्त साम्राज्य के पतन (लगभग 550 ई.) के बाद भारत में राजनीतिक विखंडन का दौर आरंभ हुआ। हर्षवर्धन, चालुक्य, राष्ट्रकूट, पाल, प्रतिहार, चोल, पांड्य आदि अनेक क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ। इन राज्यों के बीच निरंतर संघर्ष , आर्थिक पुनर्संरचना और सामाजिक परिवर्तनों ने धार्मिक और दार्शनिक विचारों को नया रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

गुप्तोत्तर काल की प्रमुख ऐतिहासिक विशेषताएँ थीं—

1. **राजनीतिक विघटन**, जिससे क्षेत्रीय संस्कृति एवं संप्रदायों का विकास हुआ।
2. **भू-राजस्व प्रणाली का विस्तार** , जिससे मंदिर , मठ, गुरुकुल जैसे धार्मिक-शैक्षिक केंद्रों को भूमि अनुदान मिलने लगे।
3. **व्यापारिक मार्गों और नगरों का विस्तार** , जिससे धार्मिक विचारों का प्रसार तेज हुआ।
4. **लोकधर्म और दार्शनिक धर्म का समन्वय**, जिससे तांत्रिक परंपरा और भक्ति तत्वों को बढ़ावा मिला।
5. **सांस्कृतिक पुनर्जागरण** , जिसने मूर्तिकला , शास्त्र-लेखन, साहित्य और शिक्षण संस्थानों को फलने-फूलने दिया।

इन परिस्थितियों ने धार्मिक संप्रदायों को अपना दार्शनिक ढाँचा मजबूत करने , नए अनुष्ठानों को विकसित करने और जनसामान्य से जुड़ने का अवसर प्रदान किया।

शैव संप्रदाय का विकास

गुप्तोत्तर काल में शैव धर्म का विकास सबसे व्यापक और संगठित रूप में हुआ। शैव संप्रदाय कई धाराओं में विभाजित होकर संपूर्ण भारत में फैला। इसकी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

पाशुपत संप्रदाय

यह सबसे प्राचीन शैव संप्रदाय माना जाता है। पाशुपत संप्रदाय के अनुयायी 'पशु' अर्थात जीव और 'पति' अर्थात शिव की सत्ता को मानते थे।

विशेषताएँ—

- कठोर तप, स्नान, जप, ध्यान।
- कापालिक साधना के प्रारंभिक तत्व।
- सामाजिक मान्यताओं से परे तपस्या।

गुर्जर-प्रतिहारों और मालवा–अवanti क्षेत्र में इसका व्यापक प्रभाव था।

कापालिक और कालामुख संप्रदाय

कापालिक साधक खोपड़ी को पात्र के रूप में प्रयोग करते थे और तांत्रिक अनुष्ठानों पर बल देते थे।
वैशिष्ट्य—

- प्रेत-तांत्रिक साधनाएँ
- शक्ति और शिव का संयुक्त उपासना–रूप
- समाज में दैवी-भय और शक्ति-ऊर्जा पर विशेष बल

कालामुख संप्रदाय विद्यानंद, सोमेश्वर जैसे गुरुओं द्वारा लोकप्रिय हुआ।

कश्मीर शैववाद

गुप्तोत्तर काल का सबसे दार्शनिक शैव संप्रदाय। इसके प्रमुख आचार्य—

- वासुगुप्त
- अभिनवगुप्त
- क्षेमराज

यह '**शिव-अद्वैतवादी**' था और मानता था कि—

- शिव ही ब्रह्म है
- विश्व शिव की अभिव्यक्ति है
- ज्ञान और योग के द्वारा मोक्ष

इस संप्रदाय ने कला, नृत्य, साहित्य और संगीत पर गहरा प्रभाव डाला।

वीरशैव तथा लिंगायत परंपरा

11वीं–12वीं शताब्दी में बसवेश्वर , अल्लम प्रभु और अक्कमहादेवी ने लिंगायत परंपरा का विस्तार किया।
मुख्य बिंदु—

- जाति-विरोध
- कर्मकांड-विरोध
- व्यक्तिगत शिव–लिंग धारण
- सामाजिक समानता

शैव धर्म का यह रूप जनसामान्य के बीच विशेष लोकप्रिय हुआ।

वैष्णव संप्रदाय का विकास

गुप्तोत्तर काल में वैष्णव धर्म एक सुव्यवस्थित सिद्धांतवादी और भक्तिपरक धर्म के रूप में विकसित हुआ।

भागवत और पंचरात्र परंपरा

भागवत धर्म में विष्णु के अवतारों—विशेषतः कृष्ण—की पूजा केंद्रीय थी।
विशेषताएँ—

- वृंदावन-कृष्ण परंपरा
- गीता और भागवत पुराण का प्रभाव
- ईश्वर की भक्ति को मोक्ष का मार्ग मानना

पंचरात्र संप्रदाय में पाँच रातों के अनुष्ठान और विस्तृत मंदिर-उपासना विधान का विकास हुआ।

रामानुज का विशिष्टाद्वैत

11वीं शताब्दी में रामानुजाचार्य ने एक भव्य दार्शनिक प्रणाली प्रस्तुत की—

- जीव–ईश्वर–जगत तीनों सत
- ईश्वर सर्वोच्च
- भक्ति–योग मोक्ष का मार्ग
- सामाजिक समानता पर जोर

उनके प्रयासों से श्रीवैष्णव परंपरा सुदृढ़ हुई।

मध्वाचार्य का द्वैतवाद

मध्व ने जीव और ईश्वर को भिन्न बताया।
मुख्य तत्त्व—

- भक्ति का दार्शनिक आधार
- ईश्वर की पूर्ण सत्ता
- दास-भाव

कर्नाटक, विदर्भ और आंध्र क्षेत्र में इसका विशेष प्रभाव पड़ा।

शाक्त और तांत्रिक संप्रदाय

गुप्तोत्तर काल शाक्त और तांत्रिक परंपरा का स्वर्णकाल माना जाता है।

3.4.1 देवी-उपासना का विकास

देवीमहात्म्य (700–800 ई.) इसी काल में रचा गया।
इसमें शक्ति की 'त्रिगुणात्मक स्वरूप'—महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती—का वर्णन है।

शक्तिपीठों का विस्तार

इस समय कामाख्या (असम) , तारापीठ (बंगाल) , ज्वालामुखी (हिमाचल) , त्रिपुरा सुंदरी (त्रिपुरा) जैसे शक्ति केंद्र प्रमुख बने।

तांत्रिक परंपरा का उदय

तंत्र साधना ने तीनों धर्मों—शैव, शाक्त, और बौद्ध—को प्रभावित किया।
तंत्र के मुख्य स्वरूप—

- मंत्र
- यंत्र
- मुद्रा
- पंचमकार (कुछ संप्रदायों में)
- सूक्ष्म शरीर-चक्र प्रणाली

तांत्रिक उपासना का उद्देश्य था—

- कुंडलिनी जागरण
- शक्ति का आह्वान
- दैवी-ऊर्जा का अनुभव

बौद्ध धर्म का विकास

गुप्तोत्तर काल में बौद्ध धर्म में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

वज्रयान

पाल वंश के संरक्षण में बिहार–बंगाल क्षेत्र में इसका विस्तार हुआ।
विशेषताएँ—

- तांत्रिक तत्व
- मंत्र-साधना
- वज्रधातु-तंत्र
- करुणा और प्रज्ञा का समन्वय

सहजयान और सिद्ध परंपरा

सरहपा, लुईपा, कन्हपा, तिलोपा जैसे सिद्ध आचार्यों ने ध्यान , सहजभाव, तथा योग-साधना को महत्व दिया।

कालचक्रयान

तिब्बत और हिमालयी क्षेत्रों में विकसित इस संप्रदाय का केंद्र था—

- समय-चक्र (कालचक्र)
- ब्रह्मांड और मानव के बीच संबंध

बौद्ध विश्वविद्यालयों की भूमिका

नालंदा, विक्रमशिला, सोमपुरी, ओदंतपुरी—इन सभी ने वज्रयान परंपरा को संरक्षित किया। यहाँ दर्शन, तंत्र, चिकित्सा, योग, वास्तु, व्याकरण आदि विषय पढ़ाए जाते थे।

जैन धर्म का विकास

गुप्तोत्तर काल जैन धर्म के ग्रंथ-रचना और दार्शनिक विकास का महत्वपूर्ण समय था।

प्रमुख विशेषताएँ—

- जैन संघों का पुनर्गठन
- आगमों की व्याख्या
- श्वेतांबर-दिगंबर परंपराओं का विस्तार
- मंदिर-वास्तुकला का विकास
- तर्कशास्त्र और न्याय दर्शन में योगदान

जिनसेन, हरिभद्र सूर्य, जिनदत्त सूर्य, सोमदेव सूर्य—इन विद्वानों ने जैन मत की दार्शनिक नींव को सुदृढ़ किया।

भक्ति आंदोलन का प्रारंभिक विकास

गुप्तोत्तर काल ने भक्ति आंदोलन के लिए आधार तैयार किया।
आलवार (तमिल वैष्णव संत) और **नयनार** (तमिल शैव संत) इसी समय हुए।
मुख्य मूल्य—

- ईश्वर के प्रति व्यक्तिगत प्रेम
- जाति-भेद का विरोध
- भाषा-जनभाषा में भक्ति
- मंदिर संस्कृति का विकास

इसका प्रभाव आगे चलकर उत्तर भारत के भक्ति आंदोलन (रामानंद, कबीर, मीरा, तुलसी) में दिखाई देता है।

कला, साहित्य और वास्तुकला पर प्रभाव

गुप्तोत्तर काल की कला धार्मिक संप्रदायों से गहराई से प्रभावित थी।

मंदिर-वास्तुकला

- नागर शैली (उत्तरी भारत)
- द्रविड़ शैली (दक्षिण)
- वेसर शैली (मध्य भारत)

वैष्णव, शैव, और शाक्त मंदिरों का विशाल निर्माण हुआ—

- तंजावुर का बृहदीश्वर
- खजुराहो
- कांचीपुरम
- एलोरा की कैलाशनाथ गुफा

मूर्तिकला

- शिव, विष्णु, देवी के बहुरूप
- अवलोकितेश्वर, मैत्रेय, तारा की मूर्तियाँ
- जैन तीर्थंकर प्रतिमाएँ

साहित्य

- काव्यशास्त्र
- रामायण–महाभारत की नई टीकाएँ
- पुराण साहित्य का विस्तार
- तांत्रिक ग्रंथों की रचना
- बौद्ध सिद्ध साहित्य

सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभाव

गुप्तोत्तर धार्मिक संप्रदायों ने—

1. सामाजिक एकता
2. गाँव और नगर समाज में धार्मिक संरचनाएँ
3. मंदिर-आधारित अर्थव्यवस्था
4. शिल्प और कला का संरक्षण
5. जाति व्यवस्था में आंशिक परिवर्तन
6. स्त्री की धार्मिक भूमिका में बदलाव

इन सभी क्षेत्रों में दीर्घकालीन प्रभाव छोड़े।

निष्कर्ष

गुप्तोत्तर काल भारतीय उपमहाद्वीप के धार्मिक इतिहास का अत्यंत महत्वपूर्ण चरण है। इस काल में न केवल विभिन्न धार्मिक संप्रदायों का उदय और विस्तार हुआ , बल्कि भारतीय समाज की संरचना , कला, साहित्य, दर्शन, राजनीति, और संस्कृति पर भी इनका गहरा प्रभाव पड़ा। धार्मिक संप्रदायों का यह विकास किसी एक कारण से संभव नहीं हुआ , बल्कि यह अनेक सामाजिक , आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का संयुक्त परिणाम था। इस काल में शैव , वैष्णव, शाक्त, तांत्रिक, बौद्ध और जैन सभी संप्रदायों ने अपने सिद्धांतों को पुनर्गठित किया, जनसामान्य के अनुरूप ढाला और विशाल धार्मिक संस्थानों के माध्यम से उन्हें स्थायी रूप प्रदान किया। विशेष रूप से शैव और वैष्णव संप्रदाय मंदिर-आधारित संस्कृति के सहारे पूरे भारत में फैल गए। तांत्रिक परंपरा ने सभी प्रमुख धर्मों को प्रभावित किया और लोकविश्वासों को दार्शनिक रूप देने का प्रयास किया। बौद्ध धर्म ने वज्रयान और सहजयान जैसी नई परंपराओं को विकसित किया , जो तिब्बत , नेपाल, भूटान और पूर्वी एशिया में अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध हुई। जैन धर्म ने तर्कशास्त्र और ग्रंथ-रचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल कीं। भक्ति आंदोलन ने धार्मिक जीवन को जनसुलभ बनाया और जातिगत कठोरता को चुनौती दी।

धार्मिक संप्रदायों की विविधता , सहिष्णुता, और आपसी सह-अस्तित्व ने भारतीय संस्कृति को विश्व में अनूठा स्थान दिया। आज भी भारतीय समाज में जो दार्शनिक बहुलता , धार्मिक विविधता, सांस्कृतिक समन्वय और आध्यात्मिक समृद्धि दिखाई देती है, उसका मूल गुप्तोत्तर काल में ही निहित है। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि **गुप्तोत्तर काल धार्मिक संप्रदायों का संक्रमण-काल नहीं था , बल्कि भारतीय धर्म और दर्शन के पुनर्जन्म तथा पुनर्संरचना का काल था** , जिसने आगे आने वाले हजार वर्षों की भारतीय सभ्यता की दिशा निर्धारित की।

REFERENCES

1. आर.सी. मजूमदार – *Ancient India*
2. रोमिला थापर – *A History of India*
3. डी.एन. झा – *Ancient Indian History and Culture*
4. पी.वी. केन – *History of Dharmaśāstra*
5. ए.के. वार्डर – *Indian Buddhism*
6. दत्त, सुशीला – *Buddhist Sects in India*
7. हजारीप्रसाद द्विवेदी – *भारतीय संस्कृति के आयाम*
8. पं. हजारीप्रसाद – *भारतीय धर्म–परंपरा*
9. के.ए. नीलकंठ शास्त्री – *History of South India*
10. राधाकृष्णन – *Indian Philosophy*
11. टी.वी. महालिंग – *Administrative and Social Life in South India*
12. शैलेश कुमार – *गुप्तोत्तर भारत का धार्मिक इतिहास*
13. राम शरण शर्मा – *भारत का प्राचीन इतिहास*
14. एल.डी. बर्नेट – *Tibetan Buddhism and Tantra*
15. जैन, जगदीशचंद्र – *जैन धर्म का इतिहास*